दंसण मूलो धम्मो

# आत्मधर्म

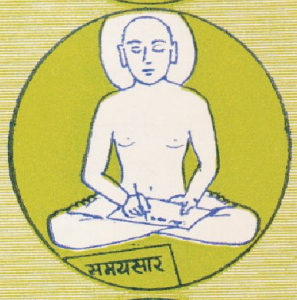


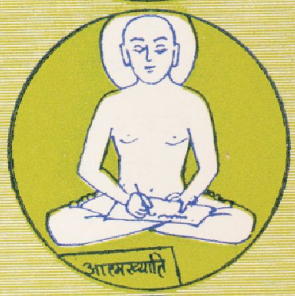


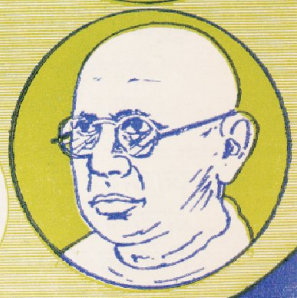

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

---

*यह राग-आग दहै सदा,*
*तातैं समामृत सेइये।*
*चिर भजे विषय-कषाय अब तो,*
*त्याग निजपद बेइये॥*

---

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

# आत्मधर्म [ ३७७ ]

[ शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक ]

संपादक :
**डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल**

प्रबंध संपादक :
**अखिल बंसल**

कार्यालय :
**श्री टोडरमल स्मारक भवन**
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स
जयपुर

**क्या**

१ जानत क्यों नहीं रे
२ स्वद्रव्य का ही अवलंबन कर
३ संपादकीय : सम्यग्ज्ञान दीपिका
४ समयसार प्रवचन
५ परमात्मप्रकाश प्रवचन
६ नयों के कथन का मूल प्रयोजन
७ पुरुषार्थ ही एक मार्ग
८ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
९ ज्ञान-गोष्ठी
१० समाचार दर्शन
११ पाठकों के पत्र
१२ प्रबंध संपादक की कलम से

आत्मधर्म में प्रकाशनार्थ बहुत से लेख, कविताएँ आदि प्राप्त हो रही हैं। आत्मधर्म के सामान्य अंकों में पूज्य कानजीस्वामी द्वारा प्रतिपादित तत्त्व-विवेचन एवं संपादकीय के अतिरिक्त अन्य लेखादि छापने की परंपरा नहीं है, अतः क्षमा करें।

# आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३७७] अंक : ५


जानत क्यों नहिं रे,
हे नर आतमज्ञानी॥ जानत०॥
राग-द्वेष पुद्गल की संपति,
निश्चै शुद्ध निशानी॥ जानत०॥
जाय नरक पशु नर सुर गति में,
यह परजाय बिरानी।
सिद्ध सरूप सदा अविनाशी,
मानत बिरले प्रानी॥ जानत०॥
कियो न काहू हरै न कोई,
गुरु-शिष कौन कहानी।
जनम-मरन मलरहित विमल है,
कीच बिना जिम पानी॥ जानत०॥
सार पदारथ है तिहुँ जग में,
नहिं क्रोधी नहिं मानी।
'दौलत' सो घट मांहि बिराजे,
लखि हूजे शिवथानी॥जानत०॥

# स्वद्रव्य का ही अवलंबन कर....

आत्मार्थी को एक ही बार में यह बात बैठना चाहिये कि मुझे अपने स्वद्रव्य का अवलंबन ही शुद्धता का कारण है; इसके सिवा किसी भी परद्रव्य का अवलंबन अशुद्धता का कारण है। मेरी शांति यदि पर के अवलंबन से हो, तब तो मैं पराधीन हो जाऊँ, पराधीनता में शांति कहाँ से हो सकती है? मेरी शांति तो स्वाधीन है। मैं स्वद्रव्य का जितना अवलंबन करूँ, उतनी ही शुद्धि और शांति होगी।

जो आत्मार्थी हों – आत्मा की शुद्धि, शांति और मुक्ति करना चाहते हों; उन्हें परद्रव्य के अवलंबन को अशुद्धता का कारण जानकर उसे छोड़ देना चाहिये और स्वद्रव्य के अवलंबन को शुद्धता का कारण जानकर उसमें एकाग्रता करना चाहिये।

जितना स्वद्रव्य का अवलंबन है, उतना मोक्ष का ही कारण है, और जितना परद्रव्य का अवलंबन है, उतना बंध का ही कारण है; इसलिये हे जीवो! स्वद्रव्य का अवलंबन करो और परद्रव्य का अवलंबन छोड़ो।

श्री वीतरागी देव–गुरु तो ऐसा स्वद्रव्य के अवलंबन का ही उपदेश देते हैं। वह उपदेश झेलकर जिसने स्वद्रव्य का अवलंबन किया, उसी ने देव–गुरु का उपदेश माना है और स्वद्रव्य का अवलंबन करने के बदले जिसने परद्रव्य के अवलंबन से लाभ माना, उसने श्री देव–गुरु की आज्ञा का पालन नहीं किया।

श्री वीतरागी देव–गुरु की आज्ञा है कि – हे जीवो! शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वद्रव्य का अवलंबन ही शुद्धता का कारण है, इसलिये स्वद्रव्य का अवलंबन करो और परद्रव्य का अवलंबन अशुद्धता का कारण है, इसलिये उसे छोड़ो; यही मुक्त होने का उपाय है।

– पूज्य कानजीस्वामी

# सम्पादकीय

## सम्यग्ज्ञानदीपिका

### एक और इंटरव्यू : कानजीस्वामी से

बहुचर्चित पुस्तक 'सम्यग्ज्ञान दीपिक' को लेकर कतिपय निहित स्वार्थों द्वारा समाज में अनेक भ्रम फैलाए जा रहे हैं। उनके समुचित समाधान हेतु आत्मधर्म के संपादक द्वारा पूज्य कानजीस्वामी से सोनगढ़ में दिनांक १६-१०-७६ को लिया गया एक इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

'कौन किस का विरोध करता है, अज्ञानवश सब अपना ही विरोध करते हैं।' उक्त मार्मिक शब्द पूज्य कानजीस्वामी ने तब कहे, जब उनसे पूछा गया कि सम्यग्ज्ञान दीपिका को लेकर कुछ लोग आपका बहुत विरोध कर रहे हैं। बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा - भाई! मैं तो ज्ञानानंदस्वभावी एक अनादि-अनंत ध्रुव आत्मा हूँ। मुझे वे जानते ही कहाँ है, यदि वे मुझे वास्तविकरूप से जान लें तो विरोध ही न करेंगे। विरोध करनेवाले अपनी पर्याय में अपनी आत्मा का ही विरोध कर रहे हैं। इस अमूल्य मनुष्य जीवन को आत्महित में न लगाकर बैर-विरोध में लगाना, यह तो मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी हार है। अपन तो किसी से बैर-विरोध रखते नहीं। कोई रखो तो रखो, उसमें हम क्या कर सकते हैं ?

हमारी दृष्टि में तो सभी आत्मायें समान हैं, सभी भगवानस्वरूप हैं। पर्याय में जो अल्पकाल की भूल है, वह भी अल्पकाल में निकल जानेवाली है। और भूल भरी आत्मा तो करुणा की पात्र है, न कि विरोध की पात्र। अत: हम तो किसी से बैर-विरोध रखते नहीं।

जब उनकी आध्यात्मिक विभोरता को भंग करते हुए मैंने कहा - विरोध तो सम्यग्ज्ञान दीपिका को लेकर है, तब बोले - सम्यग्ज्ञान दीपिका को लेकर है तो हमसे क्यों कहते हैं ? क्षुल्लक धर्मदासजी से कहें। वह उन्होंने बनायी है, मैंने तो कोई बनायी नहीं।

**प्रश्न** – आपने बनायी तो नहीं, पर छपाई तो है ?

**उत्तर** – वह तो हमारे जन्म से ढाई माह पूर्व स्वयं क्षुल्लक धर्मदासजी ने छपाई थी। ८७ वर्ष पूर्व पंडित श्रीधर शिवलालजी के ज्ञानसागर छापाखाना, बंबई में वि.सं. १९४६ माघ शुक्ला १५ मंगलवार को सर्वप्रथम छपी थी, और हमारा जन्म वि. सं. १९४७ (गुजराती १९४६) वैशाख शुक्ला दोज को हुआ था। यह पुस्तक हमें वि. सं. १९७८ में मिली थी जो आज भी हमारे पास मौजूद है तथा सहारनपुर, भोपाल, खुरई आदि अनेक स्थानों के जिन-मंदिरों में विद्यमान है।

जब उन्होंने तत्काल उक्त पुस्तक मुझे दिखायी, तब मैंने उसको अच्छी तरह देखा। उसके अंत में निम्नानुसार लिखा पाया :-

''येह सम्यक्ज्ञानदीपिका नाम की पुस्तक हम बणाई है इसमै मूल हेतु मेरा येह है कि स्वयं ज्ञानमयी जीव जिस स्वभाव सै तन्मयि है, उसी स्वभाव की स्वभावना जीव सै तन्मयि अचल होहु, येही हेतु अंत:करण मै धारण करिकै येह पुस्तक बणाई है ५०० पाँच सौ पुस्तक छापके द्वारा प्रसिद्ध होणे की सहायता के अर्थ रुपया १०० येक सौ तो जिल्हा स्याहाबाद मुकाम आरा ठिकाणौं मखनललाजी की कोठी में बाबू विमलदासजी की विधवा हमारी चेली द्रौपदी ने दिया है।''

इसमें उनहोंने पुस्तक बनाने का उद्देश्य तो स्पष्ट किया ही है। साथ ही पुस्तक छपाने में सहायता करनेवालों की चर्चा तक कर दी है।

जब मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा – न सही पहली बार, दूसरी बार तो आपने छपाई। तब वे बोले – दूसरी बार भी उन्होंने उसी प्रेस में दो वर्ष बाद ही वि. सं. १९४८ में ५०० प्रतियाँ छपाई थीं।

**प्रश्न** – तीसरी बार सही !

**उत्तर** – तीसरी बार भी आज से ४२ वर्ष पूर्व सन् १९३४ ई. में अमरावती से हीरालाल बापूजी काले तथा सिंघई श्री कुन्दनलालजी परववार ने छपाई थी। जिसकी भूमिका ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने लिखी है।

उक्त प्रति भी तत्काल उन्होंने मेरे सामने रख दी। मैंने ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी द्वारा लिखित भूमिका देखी। उसमें लिखा था :-

''मैंने इस पुन: मुद्रित ग्रंथ को आद्योपांत पढ़ा। यह ग्रंथ आत्मज्ञान के मनन के लिये व शुद्ध आत्मा की पृथक् पहचान के लिये बहुत उपयोगी है। इस ग्रंथ में सब वर्णन स्याद्वाद लक्षणमयी जिनवाणी के आधार से अनेकांत स्वरूप है तथा जो अपूर्व अध्यात्म कथन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने श्री समयसार ग्रंथ में किया है, उसी का इसमें निचोड़ है।.....

.....एकांत में मनन करने के लिये व अंतरंग में आत्मज्योति के देखने के लिये यह सम्यक्ज्ञान दीपिका दीपक के समान बार-बार प्रकाश करने योग्य है, पढ़ने व मनन करने योग्य है। इस पुस्तक में धर्मदासजी महाराज ने सैकड़ों लौकिक दृष्टांतों को देकर आत्मा को और उसके सम्यक्ज्ञानमयी प्रकाश को तन-मन-वचन व उनकी क्रियाओं से, द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म से व सर्व जगत के प्रपंच से व पुद्गलादि पाँच द्रव्यों से भिन्न दिखाया है, बड़ा ही उपकार किया है। हर एक अध्यात्म प्रेमी जैन व अजैनों को यह ग्रंथ उपकारी है। हर एक आत्मरस पिपासु की पिपासा इस ग्रंथ घट में भरे हुए अमृत के पान से शांत होगी।''

अमरावती २९-८-१९३४ ब्रह्मचारी शीतल

मैं पढ़ ही रहा था कि मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए गुरुदेव बोले कि ये क्षुल्लक धर्मदासजी जयपुर के पास सवाईमाधोपुर तालुका में बोलीगाँव के रहनेवाले थे। खंडेलवाल जाति के चूड़ीवाल गदिया थे। पिता का नाम श्रीलालजी व माता का नाम ज्वालाबाई था और इनका गृहस्थ अवस्था का नाम धन्नालाल था। यह उन्होंने अपनी 'स्वात्मानुभवमनन' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है।

इनकी ये पुस्तकें बहुत दिनों से पठन-पाठन की वस्तु बन रही हैं। तीन-तीन बार छप चुकी हैं और सब मदिरों में मौजूद हैं।

**प्रश्न** - होंगी, इससे क्या ? आपने चौथी बार तो छपाई ?

**उत्तर** - हम तो पत्र भी नहीं लिखते। छपाने-वपाने का काम हमारा नहीं।

**प्रश्न** – यह तो ठीक, इसमें क्या। आपने न सही, आपके स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट ने तो छपाई ?

**उत्तर** – उसने भी गुजराती में छपाई थी। हिन्दी में तो भावनगर मुमुक्षु मंडल से सात-आठ वर्ष पहले छपी थी।

**प्रश्न** – किसी भी मुमुक्षु मंडल से छपी हो, हम तो यही समझते हैं कि आपने छपाई ?

**उत्तर** – यह अच्छा है, ऐसा क्यों ?

**प्रश्न** – इसलिये, क्योंकि सभी मुमुक्षु मंडल हैं तो आखिर आपके ही। आपकी आज्ञानुसार ही तो कार्य करते हैं ?

**उत्तर** – अच्छी बात कही। मुमुक्षु मंडल हमारे कैसे ? हम तो किसी को कोई आज्ञा नहीं देते। क्या तुम यह समझते हो कि सब हम से पूछ-पछूकर कार्य करते हैं ? अरे ! हमें कहाँ इतनी फुर्सत कि इन झंझटों में फँसें ? सारे हिन्दुस्तान के सैकड़ों मुमुक्षु मंडलों की बात तो दूर, हम तो यहाँ रहकर भी ट्रस्ट का भी कुछ नहीं देखते। ये जानें रामजीभाई आदि।

**प्रश्न** – माना कि भावनगर मुमुक्षु मंडल ने आपसे पूछकर नहीं छपाई, पर जब आपको पता चला था, तब आपको मना तो करना था। यदि आप मना करते... ?

**उत्तर** – हम इन बातों में नहीं पड़ते। फिर हम क्यों मना करते ? यह कोई खराब पुस्तक तो है नहीं। क्षुल्लकजी ने उसमें आत्मानुभव की बात अनेक उदाहरणों द्वारा समझायी है। वे तो सीधे-सज्जन आध्यात्मिक पुरुष थे, उन्होंने तो अपनी सीधी-सादी भाषा में अनुभव की महिमा बतायी है। वे क्या जानते थे कि भविष्य में ऐसे लोग भी निकलेंगे कि उनके द्वारा प्रतिपादित सीधे सच्चे भावों को तोड़-मरोड़ कर इस तरह प्रस्तुत करेंगे।

**प्रश्न** – कुछ लोग तो कहते हैं कि उसमें व्यभिचार का पोषण है ?

**उत्तर** – जिन्हें परलोक का भी भय नहीं है, उन्हें कौन समझाये ? जरा विचार तो करो, जो स्वयं ब्रह्मचारी क्षुल्लक हो, क्या वे व्यभिचार का पोषण करेंगे ? उन्हें इसमें क्या लाभ था ? यह तो इन सबकी बुद्धि की बलिहारी है जो इतनी अच्छी पुस्तक में से यह भाव निकाला। और

हम भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं, ८७ वर्ष की उमर है। तथा यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण से प्रभावित होकर ६४ सम्पन्न घरानों की पढ़ी-लिखी नई उमर की बहिनें आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर यहाँ रहती हैं। अनेक भाईयों ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य लिये। अधिक क्या कहें ? अनेक दम्पति भी यहाँ ब्रह्मचर्य लेकर रहते हैं और तत्त्व अभ्यास करते हैं।

जरा विचार तो करो जो क्षुल्लक धर्मदासजी उसी सम्यग्ज्ञान दीपिका में पृष्ठ नं. ५२ पर यह लिख रहे हैं कि –

''जैसे कोहू ऽस्त्री अपना स्वभर्तारकूं त्यजकरिकै अन्य पुरुष की सेवा रमण आदि कर्ती है सो ऽस्त्री व्यवचारणी है, तैसे ही कोहू अपणा आपमै आपमयि स्वसम्यक्ज्ञानमयि देवकूं त्यज करिकै अज्ञानमयि देव की सेवा भक्ति मै लीन है, सो मिथ्याती है।''

वे व्यभिचार का पोषण कैसे कर सकते हैं ?

**प्रश्न** – पर उसमें एक जगह तो स्पष्ट ही व्यभिचार का पोषण किया है ?

**उत्तर** – तुमने पढ़ा है ? निकालो, देखो क्या लिखा है ? जब मैंने सम्यग्ज्ञान दीपिका की बहुचर्चित पंक्तियाँ इस प्रकार पढ़ीं –

''जैसे जिस स्त्री का शिर के ऊपर भरतार है, स्यात् ते स्त्री पर पुरुष का निमित्त सै गर्भबी धारण करै तो ताकूं दोष लागते नाहीं।''

तब वे कहने लगे – पूरा तो पढ़ो अकेला दृष्टांत क्यों पढ़ते हो ? साथ में दृाष्टांत भी पढ़ो। तुम तो विद्वान हो, इतना भी नहीं जानते कि जो वाक्य 'जैसे' से आरंभ होता है, वह 'वैसे' बिना समाप्त नहीं होता।

क्षुल्लकजी ने सम्यग्ज्ञान दीपिका 'स्त्री चरित्र' समझाने को नहीं बनायी थी। उन्होंने तो आत्मा का अनुभव कैसे हो और आत्मानुभवी की दशा कैसी होती है, बताने के लिये इसे बनाया है। स्त्री का तो मात्र दृष्टान्त दिया है, सिद्धांत तो आगे है, उसे पढ़ो।

जब मैंने आगे इसप्रकार पढ़ा कि –

''तैसे ही किसी पुरुष का मस्तक सै तन्मयि मस्तग के ऊपर स्वसम्यक्ज्ञानमयि परब्रह्म

परमात्मा है स्यात् सो पुरुष परकर्म वसात् दोष बी धारण करै तो तापुरुषकं दोष लागते नाहीं। बड़े का शरण लेणे का यही फल है।''

तब वे कहने लगे देखो! वे तो आत्मानुभव की महिमा बता रहे हैं। इसमें व्यभिचार का पोषण कैसे हो गया?

**प्रश्न** – आपने कहा, वह बात तो ठीक है, पर ऐसा खोटा दृष्टांत भी क्यों दिया?

**उत्तर** – लो, अब उन्होंने ऐसा दृष्टांत भी क्यों दिया, यह भी मैं बताऊँ। फिर दृष्टांत में भी खोट कहाँ है? खोट तो दोष देखनेवालों की नजर में है।

**प्रश्न** – साफ लिखा है 'दोष लागते नाहीं'।

**उत्तर** – 'दोष लागते नाहीं' का अर्थ है 'कोई दोष देवै नाहीं' अर्थात् दुनियां में उसे कोई दोष नहीं देता, उसकी बदनामी नहीं होती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह दोषी नहीं है। पर-पुरुष से रमण करनेवाली तो पापी है ही, पर उसका पाप खुलता नहीं है, बस बात इतनी सी है, क्योंकि उसका पति विद्यमान है।

तथा ध्यान से देखो उसमें 'स्यात्' शब्द पड़ा है, जिसका अर्थ कदाचित् होता है अर्थात् आशय यह है कि उसकी भावना पर-पुरुष से रमण करने की नहीं है, पर कदाचित् प्रसंगवश बलात्कार आदि के कारण गर्भ भी रह जाये तो कोई उसे दोष नहीं देता। 'बड़े की शरण लेने का यही फल है' का आशय पति की उपस्थिति से है।

**प्रश्न** – 'दोष लागते नहीं' का अर्थ 'दोष देवै नाहीं' आपने कैसे किया?

**उत्तर** – हमने किया नहीं, ऐसा ही अर्थ है। क्षुल्लक धर्मदासजी की इसके एक वर्ष पहले उनके द्वारा ही बनायी गयी पुस्तक 'स्वात्मानुभवमनन एवं भाषावाक्यावली' में भी यह दृष्टांत दिया गया है। दृष्टांत हूबहू है, पर उसमें 'लागते नाहीं' की जगह पर 'देवै नाहीं' लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि उनका आशय 'लागते नाहीं' से 'देवै नाहीं' का ही है।

उक्त पुस्तक भी मुझे दिखाते हुए कहा, लो देखो। मैंने देखा तो 'भाषा वाक्यावली' पृष्ठ चार पर इस प्रकार लिखा था :-

''जैसे जिस स्त्री के शिर के ऊपर भरतार है स्यात् पर पुरुष के निमित्त सैं वा स्त्री गर्भबी धारण करै तोबी उसकूं कोई **दोष देवै नाहीं**। तैसे ही जिसके मस्तक ऊपर अरिहंत गुरु है वो पर पदार्थ के निमित्त सैं कोई दोष बी धारण करैगो तो उनकूं दोष नाहीं लागै। बड़े का शरणा लेणे का येही फल है।''

मैं उक्त पंक्तियाँ पढ़ ही रहा था कि अत्यंत भावुक होते हुए गुरुदेव बोले कि क्षुल्लक धर्मदासजी ने अपने ग्रंथों में बड़े ही मर्म की बातें लिखी हैं। उनकी भाषा जरूर सादी है, पर भाव गंभीर हैं; किंतु ऐसा नहीं कि समझ में ही न आये। समझने की कोशिश करें तो सब समझ में आ सकता है। पर जिन्हें समझना ही नहीं, लड़ना है, उन्हें कौन समझाये ?

**प्रश्न** – ऐसा न भी लिखते तो क्या हो जाता ?

**उत्तर** – इसका उत्तर तो क्षुल्लकजी ही दे सकते हैं।

**प्रश्न** – ठीक है, तो आप इसे सम्यग्ज्ञान दीपिका में से निकलवा दीजिए ?

**उत्तर** – यह काम हमारा नहीं है। किसी आचार्य या विद्वान् के शास्त्र में कुछ परिवर्तन करना हम उचित नहीं मानते। और किसी को अधिकार भी क्या किसी शास्त्र में से कुछ निकालने का। इसप्रकार के उदाहरण तो अनेक शास्त्रों में आते हैं। कहाँ-कहाँ से क्या-क्या निकालोगे ? अरे भाई, ज्ञानियों के कथन का मर्म समझना पड़ेगा, उसमें बदला-बदली से काम नहीं चलेगा। और दृष्टांत तो एकदेश होता है, उसे सर्वांश घटित नहीं करना चाहिये। तथा दृष्टांत किसी सिद्धांत को समझाने के लिये दिया जाता है, अत: उसके द्वारा जो सिद्धांत समझाया गया हो, उसे समझने की कोशिश करना चाहिये। दृष्टान्तों में नहीं उलझना चाहिये।

**समयसार कलश** के १५० वें कलश में लिखा है – ''ज्ञानिन् भुंक्ष्य परापराधजनितो नास्तीह बंधस्तव।'' हे ज्ञानी ! तू कर्म के उदयजनित उपभोग को भोग। तेरे पर के अपराध कर उत्पन्न हुआ ऐसा बंध नहीं है।

तो क्या समयसार में से उक्त पंक्तियाँ भी हटा दी जायें। भाई ! उनका मर्म समझने की कोशिश करना चाहिये। पंडित जयचन्दजी छाबड़ा ने उक्त पंक्ति का उक्त अर्थ लिखते हुए भी

भावार्थ में स्पष्ट लिखा कि – यह बात भोग की प्रेरणा देने के लिये नहीं, बल्कि परद्रव्य से अपना बुरा मानने की शंका मिटाने के लिये कही है।

इसी तरह का 'ज्ञानवंत के भोग निर्जरा हेतु हैं।' वाला कथन है। इसमें भोगों को निर्जरा का कारण बताना उद्देश्य नहीं है, बल्कि ज्ञान की महिमा बताना है।

पंडित दौलतरामजी ने **छहढाला** में ज्ञानी की उपमा नगर-नारी (वेश्या) के प्यार से दी है। **प्रमेयरत्नमाला** में ज्ञान, सुख और वीर्य की एकसाथ एकत्र उपस्थिति की सिद्धि के लिये – ''यून: कान्ता समागमे'' लिखा है, अर्थात् स्त्री-पुरुष के समागम का उदाहरण दिया है।

आचार्य अकलंकदेव ने **राजवार्तिक** में ज्ञान होते ही बंध-निरोध सिद्ध करने के लिये माँ और बेटा के समागम का उदाहरण दिया है। समयसार की **आत्मख्याति टीका** में आस्रव को अशरण सिद्ध करने के लिये भोगकाल में वीर्यमोक्षण का उदाहरण दिया है। और भी सैकड़ों इसप्रकार के कथन जिनागम में उदाहरण के रूप में मिल जावेंगे।

कहाँ-कहाँ से हटाओगे, क्या-क्या हटाओगे ?

**प्रश्न** – लोग तो कहते हैं कि आपने शास्त्रों को बहुत कुछ बदल दिया है, फिर इसे बदलने में क्या है ?

**उत्तर** – लोगों के कहने की हम क्या कहें, वे तो न जाने क्या-क्या कहते हैं ? हमने तो कहीं भी, कुछ भी नहीं बदला है। अपने को ही बदला है और दिगम्बर जिनवाणी के अनुसार अपने को, अपनी मान्यता को बनाया है।

**प्रश्न** – पहले जो आपसे बम्बई में इन्टरव्यू लिया था और जुलाई के आत्मधर्म में दिया था, उसका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। कुछ लोगों ने जो समाज में आपके बारे में भ्रम फैला रखे थे, वे काफी दूर हो गये हैं। इस सम्बन्ध में मेरे पास सैकड़ों पत्र आये हैं, कुछ तो आत्मधर्म में पाठकों के पत्रों के रूप में प्रकाशित भी किये हैं। लोगों का आग्रह है कि इसप्रकार के इन्टरव्यू यदि समय-समय पर आप देते रहें और वे विभिन्न पत्रों में प्रकाशित होते रहें तो बहुत से भ्रम साफ होते रहें।

**उत्तर** – भाई, हम तो इन्टरव्यू-विन्टरव्यू कुछ जानते नहीं और न हम किसी से प्रश्नोत्तर

के चक्कर में ही पड़ते हैं। हम तो अपनी आत्मा की आराधना को ही सब कुछ समझते हैं। तुमने प्रेम से जिज्ञासापूर्वक पूछा था, सो उस समय जो कुछ था सो कह दिया, अभी पूछा सो अभी कह दिया।

आत्मधर्म में या और किसी अखबार में छपाना-वपाना हमारा काम नहीं। अखबारों की बात अखबार वाले जानें।

**प्रश्न** – आत्मधर्म तो आपका ही पत्र है। उसमें तो.....

**उत्तर** – हमारा क्या? हाँ, हमारी कही तत्त्वचर्चा उसमें छपती है, पर क्या उसे हम देखते हैं? आप जानें, रामजीभाई जानें।

**प्रश्न** – यह इन्टरव्यू भी आत्मधर्म छापना चाहते हैं?

**उत्तर** – कह दिया न कि हमें क्या? आपना-छपाना तुम्हारा काम है। जो तुम जानो, सो करो। हमें तो जो कहना था, सो कह दिया।

पंडितजी! सही बात तो यह है कि लोक-संग्रह में पड़ना ही क्यों? यह महा दुर्लभ मनुष्य भव और परम सत्य दिगम्बर धर्म प्राप्त हुआ है तो इसे यों ही विकल्प जाल में उलझे रहकर गँवा देना उचित नहीं है। इसमें समय रहते आत्मा का अनुभव प्राप्त कर लेना और उसमें ही जमे रहना कर्तव्य है और तो सब कुछ ठीक है – उनमें क्या रखा है?

# स्वसमय और परसमय

आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की दूसरी गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

प्रथम गाथा में, समयप्राभृत कहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा करने पर जिज्ञासु शिष्य के हृदय में यह सहज प्रश्न उठता है कि समय क्या है ? उसके उत्तरस्वरूप आचार्यदेव कहते हैं :-

**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।**
**पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं॥२॥**

हे भव्य! जो जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है उसे निश्चय से स्वसमय जानो तथा पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित जीव को परसमय जानो।

देखो..... 'जान' शब्द कहकर श्रोता और वक्ता का निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताया है। आचार्य भगवान कहते हैं कि सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहते हो तो यह बात सुनो। सुननेवाले को भी विकल्प है तो भी कहते हैं हे शिष्य! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है, उसे स्वसमय जान, सुनने के राग को स्वसमय न जान।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित रहना कहो, शुद्धोपयोग कहो, वीतरागी दशा कहो, समाधि कहो, एक ही है। द्रव्य का लक्ष्य होने पर उस पर्याय में स्थित हुआ ऐसा कहा। जिस पर्याय में ध्रुव को ध्येय जनाया, उस पर्याय में आत्मा रहा - राग में नहीं। यहाँ परिणमन को स्वसमय कहा है। आत्मा-आत्मारूप हुआ, यही करने योग्य कार्य है। पर का लक्ष्य होने पर राग-द्वेष में स्थित, वह अनात्मा है। शुद्धात्मा की रुचिरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आत्मा है। सम्यक्त्व के विषय अपरिणामी द्रव्य की यहाँ बात नहीं, चैतन्य का परिणमन दर्शन-ज्ञानरूप है, यह पर्याय की बात है। एक समय में एक साथ स्व के एकत्वपणे जानता और परिणमता है, वह स्वसमय है।

सम्=एक साथ, अय=गमन और ज्ञान। एक साथ परिणमन एवं ज्ञान जिसमें हो, उसे समय कहते हैं। आत्मा के अतिरिक्त अन्य पाँच द्रव्यों में परिणमन है, परन्तु ज्ञान नहीं। आत्मा में एक साथ परिणमन होना अर्थात् पर्याय होना और ज्ञान होना है, अतः उसे समय कहते हैं।

पुद्गलकर्म-प्रदेशों में स्थित जीव को परसमय कहा, उसका आशय यह है कि कर्म की तरफ झुका हुआ जीव जड़ में स्थित है। अन्तर स्वभाव की रुचि छोड़कर कर्म, पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-पूजादि निमित्त की ओर झुकाव में स्थित है, वह परसमय है। राग में एकत्व मानकर वर्ते, वह परसमय है। वह युगपत् राग को अपना जानता है और परिणमता है, जिस रूप परिणमता है, उस रूप जानता हुआ परसमय है। विकार की रुचिवाला, कर्म की दृष्टिवाला जीव पुद्गल-कर्म में स्थित है।

मिथ्यादृष्टि को भी स्वपर-प्रकाशक ज्ञान है, परंतु उसे इसका भान नहीं। वह व्रत-पूजादि में धर्म मानता हुआ, पुद्गलकर्म में स्थित है। उसका आधार जड़कर्म है, ज्ञायक नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आधार आत्मा है। चतुर्थ गुणस्थान में अष्टमूलगुणादि का विकल्प आता है, परंतु ज्ञानी उसमें स्थित नहीं; स्वभाव में स्थित है।

अब यहाँ सत्तास्वरूप, दर्शनज्ञानस्वरूप, अनंत धर्मों को धरनेवाला एक धर्मी, क्रम-पर्याय और अक्रम-गुणों का धारी, स्वपर-प्रकाशकस्वभावी और असाधारण चैतन्यस्वभाव तथा अन्य द्रव्यों से भिन्न इन सात विशेषणों से जीवसामान्य की पहचान कराते हैं।

(१) अहो..... मैं सत्तारूप होने से, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति अर्थात् होना जिसका लक्षण है, ऐसी सत्तावाला हूँ। यहाँ अनुभूति से आशय निर्विकल्प अनुभूति से नहीं, अपितु एकतारूप होना (विद्यमानता) है। मैं जड़कर्म और शरीरादि का कर्त्ता नहीं, क्योंकि वे मेरी सत्ता का स्पर्श नहीं करते और मैं उनकी सत्ता का स्पर्श नहीं करता। मैं अपनी सत्तारूप हूँ और अन्य आत्मा तथा अनंत जड़पदार्थों की सत्तारूप नहीं।

आचार्यदेव करुणा करके पुकार करते हैं, हे जीव! तेरी शक्ति तेरी सत्ता में भरी है, वह बाहर से नहीं आती; अतः अपनी सत्ता को संभाल।

(२) और..... जीव चैतन्यस्वरूपत्व के कारण नित्य प्रगट उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट

दर्शन-ज्ञान ज्योतिस्वरूप है। जीव और आत्मा दोनों एक ही वस्तु है। वेदांत, अंत:-करणविशिष्ट को जीव और शुद्ध अद्वैत को आत्मा कहते हैं, परंतु ऐसे दो भेद नहीं हैं, जो जीव है, वही आत्मा है। आत्मा कैसा है ? नित्य-उद्योतरूप मलरहित है। पर्याय में मलिनता है, उसे गौण करके त्रिकाली नित्य को ध्येय बनाते हैं। भगवान..... तेरा स्वरूप मन-वचन-काय, पुण्य-पाप से भिन्न ज्ञानानंदमय है, उसकी यथार्थ समझ सम्यग्दर्शन का उपाय है। स्पष्ट=प्रत्यक्ष तेरा स्वरूप तुझसे प्रत्यक्ष, निर्मल ज्ञान ज्योतिस्वरूप है। जीव-गुणी और चैतन्यस्वरूपता उसका गुण है।

यहाँ जीव के विशेषण कह के उसका स्वरूप समझाया है। ऐसे आत्मा का अनुभव करना, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसे स्वसमय कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय है, वह त्रिकालीस्वरूप नहीं। इस विशेषण से चैतन्य को स्वभाव से ही ज्ञानाकार न मानकर बाहर ज्ञान की शोध करनेवाले सांख्यमती का निराकरण किया।

(३) अनंत धर्मों में रहे हुए एक धर्मीपने के कारण जीव को द्रव्यपना प्रगट है। मैं एक वस्तु हूँ, परंतु मुझमें अस्तित्व वस्तुत्व इत्यादि अनंत धर्म हैं। यहाँ धर्म से आशय आत्मा में रहनेवाले नित्यस्वभावों से है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप परिणति से नहीं। मुझमें अनंत धर्म होने से मैं पलटकर अनंत नहीं हो गया, परंतु अपने अनंत धर्मों का आधार ऐसा मैं एक पदार्थ हूँ।

भाई..... यह तो जन्म-मरण का दु:ख दूर करने की बात है, वाद-विवाद की वस्तु नहीं। समझने से भव-भ्रमण टलेगा। मेरे अनंत धर्मों में एकरूप रहनेवाला द्रव्यत्व मेरा ही स्वभाव है, वह किसी अन्य से नहीं। इस विशेषण से एक आत्मा में अनन्त धर्म स्वीकार न करके आत्मा को क्षणिक मानने वाले बौद्धमत का निराकरण हो गया। पर्यायबुद्धि जैन भी बौद्ध जैसा ही है।

(४) जिसने, क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से गुण-पर्यायों को अंगीकार किया है, ऐसा जीव है। आत्मा में क्रमश: उत्पन्न होनेवाली पर्यायें भी मेरा स्वभाव है। गुण एक साथ है।

क्रमबद्धपर्याय का अर्थ मात्र एक के पश्चात् एक नहीं, अपितु जिस काल में जो पर्याय होना है, वही होती है—ऐसा निश्चित क्रम है, यही क्रमबद्ध पर्यायस्वभाव है।

क्रमरूपपर्याय और अक्रमरूप गुण इन दोनों स्वभावों को मैंने अंगीकार किया है।

होना होगा, वही होगा, यह बात तो यथार्थ है, परंतु ऐसा निर्णय किसमें और किसने किया? अनंत पुरुषार्थ द्वारा स्वभाव में ऐसा निर्णय किया। क्रमबद्ध के निर्णय में दिशा बदलती है, क्रम नहीं बदलता। क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाले की रुचि बदल जाती है। जिसे क्रमबद्ध की श्रद्धा नहीं, उसकी दिशा नहीं बदली, वह मिथ्यादृष्टि रहता है। उसकी अवस्थायें भी क्रमबद्ध होती हैं। शुद्ध आत्मा की दृष्टि बिना क्रमबद्ध का यथार्थ निर्णय नहीं होता। बाहर से निर्णय न हो, अंतर्दृष्टि करे तो समझ में आये।

(५) और..... अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्त रूपों को प्रकाशित करनेवाली एकरूपता प्राप्त की है, ऐसा है। ज्ञान की स्वपर-प्रकाशक शक्ति है। ज्ञेय है, इसलिये ज्ञान है—ऐसा नहीं। स्वपरप्रकाशक स्वभाव स्वयं से है, पर से नहीं। स्व और पर को जानने से ज्ञान में द्विविधता नहीं हो जाती, वह तो एकरूप ही रहता है। स्वज्ञेय और परज्ञेय ऐसे दो भेद ज्ञेय के हैं, इसलिये ज्ञान में दोरूपता नहीं है। उसका तो अपने में अपने कारण से स्वपर-प्रकाशक स्वभाव है।

कोई ऐसा मानते हैं कि ज्ञान मात्र स्व को जानता है, पर को नहीं—ऐसे मात्र एकाकार ही माननेवाले का निषेध किया, तथा आत्मा पर को ही जानता है, स्व को नहीं—ऐसे अनेकाकार ही माननेवालों का व्यवच्छेद हुआ।

धवल में दर्शन को स्वप्रकाशक और ज्ञान को परप्रकाशक कहकर गुणभेद सिद्ध किया है परंतु गुण-गुणी तो अभेद ही है। आत्मा स्वपर-प्रकाशक है, अतः दर्शन और ज्ञान दोनों को स्वपर-प्रकाशक जानना चाहिये।

(६) अन्य द्रव्यों के विशेष गुण, अवगाहन, गतिहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, रूपित्व आदि गुणों का आत्मा में अभाव होने से तथा असाधारण चैतन्यरूप स्वभाव के कारण, जीव पाँच द्रव्यों से भिन्न है। इस विशेषण से एक ब्रह्म वस्तु को ही माननेवालों का व्यवच्छेद हुआ।

(७) अनंत अन्य द्रव्यों के साथ अत्यंत एकक्षेत्रावगाहरूप होते हुए भी आत्मा अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता, चैतन्यस्वभाव कभी पर-रूप नहीं होता। कर्म एकक्षेत्रावगाही होते हुए भी आत्मा उनमें भिन्न है। छठवें विशेषण में गुणों से भिन्नता बताते हैं और इस विशेषण में क्षेत्र से भिन्नता बताते हैं। एकक्षेत्रावगाहरूप होते हुए भी जीव अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता, अत: टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। इस विशेषण से वस्तु स्वभाव का नियम बताया। ऐसा जीव नामक पदार्थ, समय है।

यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रुव सहित तथा गुण-पर्याय सहित जीव का वर्णन किया है। शिष्य के 'समय क्या है ?' इस प्रश्न के उत्तर में समय की व्याख्या करके अब स्वसमय की बात करते हैं। जब यह जीव सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति का उदय होने से सर्व परद्रव्यों से छूटकर दर्शन-ज्ञान-स्वभाव में निश्चित प्रवृत्तिरूप आत्मतत्त्व के साथ एकत्वरूप में लीन होकर प्रवृत्ति करता है, उसे स्वसमय जानो।

देखो..... केवलज्ञान का कारण भेदज्ञान ज्योति है। घातिकर्म का अभाव या वज्रकाय केवलज्ञान का कारण नहीं। आत्मा पर-पदार्थों से भिन्न है, ऐसी भेदज्ञान ज्योति केवलज्ञान का कारण है। चतुर्थ काल या व्यवहाररत्नत्रय होय तो केवलज्ञान हो, ऐसा नहीं कहा। अरहंतपद को उत्पन्न करनेवाली तो भेदज्ञानज्योति है। अनादि से भेदज्ञान नहीं था। पर के साथ एकत्वबुद्धि छोड़कर स्व में झुका। दर्शन-ज्ञान-स्वभाव में निश्चित प्रवृत्तिरूप आत्मतत्त्व के साथ एकत्वरूप लीनता करके प्रवृत्ति करता है। आत्मस्वभाव सम्मुख होकर जो स्थित होता है, वह स्वसमय है। इसप्रकार स्वसमय की प्रतीति की जाती है। प्रतीति अर्थात् सम्यग्दर्शन जो कि धर्म का मूल है।

अब, परसमय की बात कहते हैं। अविद्या से दर्शनमोह पुष्ट हुआ है। स्वभाव का अनुसरण न करके कर्म का लक्ष्य करता है। दर्शन-ज्ञान-स्वभाव में निश्चित प्रवृत्तिरूप आत्मतत्त्व से छूटकर परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न मोह-राग-द्वेषादि भावों में एकतारूप लीनता करके प्रवर्तता है। अंतरस्वभाव में स्थिर होना निश्चित प्रवृत्ति है, परंतु ऐसा नहीं करता और

स्वयं परद्रव्य का लक्ष्य करता है। शरीर की अवस्था एवं परजीव की दया मेरे कारण पलती है, इस परनिमित्त से स्वयं मोह-राग-द्वेष करके लीन होता है, उसे परसमय जानो।

कर्म और आत्मा में तो अत्यंत अभाव है, फिर कर्म में स्थित कैसे कहा? कर्म का उदय प्रति समय होता है, वह खिर जाता है, तब अपने स्वभाव का अनुसरण न करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट नहीं करता और मोह-राग-द्वेष की पर्याय में स्थिर होता है, अतः वह पुद्गलकर्म में स्थित है, ऐसा कहा। कर्म के उदयानुसार राग-द्वेष में प्रवर्तना पड़ता है, ऐसा माननेवाला जड़कर्म में स्थित है। कार्माण स्कंधरूप प्रदेशों में स्थिर होने से परद्रव्य को अपने रूप एक काल में जानता और रागादिरूप परिणमता, ऐसा परसमय है। ऐसा प्रतीत किया जाता है।

जीव द्रव्य एक है। स्वावलंबन से स्वसमय है, परावलंबन से परसमय है। इसप्रकार जीव नामक पदार्थ को स्वसमय और परसमय ऐसा द्विविधपना प्रगट होता है।

**गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालायें खोलकर तत्त्व-प्रचार में अपना अमूल्य सहयोग दीजिए।**

# परमार्थ जीव

पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के अध्यात्म-रस से ओत-प्रोत प्रवचन आजकल परमपूज्य मुनिराज योगीन्दुदेव के ग्रंथराज 'परमात्मप्रकाश' पर चल रहे हैं।

जीवन-मरण और बंध-मोक्ष से भी रहित आत्मस्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले प्रथम अध्याय के दोहा नं. ६८ पर हुए अत्यंत मार्मिक प्रवचनों का सार आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों के लिये यहाँ दिया जा रहा है। मूल दोहा इसप्रकार है:-

**ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।**
**जिउ परमत्थे जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६८॥**

जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि हे योगीश्वर! परमार्थ से यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है, और न बंध-मोक्ष को करता है।

परमात्मप्रकाश की यह गाथा तो अमृत समान है, इसमें आनंद की ध्वनि गूंज रही है। जीव की अद्‌भुत व्याख्या की है। जिनवरदेव ने जीव की व्याख्या करते हुए कहा है कि उत्पाद-व्ययरहित, बंध-मोक्ष की पर्यायरहित ऐसा जीव है। शुद्ध निश्चयनय से भगवान आत्मा नित्यानंद ध्रुव है। वह जन्मता नहीं है अर्थात् उत्पाद की पर्याय में नहीं आता, मरता नहीं है अर्थात् व्यय में नहीं आता। एकेन्द्रिय की पर्याय हो या सिद्ध की, ध्रुव भगवान तो सदा त्रिकाल ज्ञानानंद की मूर्तिस्वरूप ही विद्यमान है।

संतों-मुनियों का कहना है कि - ध्रुव भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय की या बंध-मोक्ष की पर्याय को नहीं करता - उसे जिनवरदेव जीव कहते हैं। बंध-मोक्ष की पर्याय को जो नहीं करता, उसे हम जीव कहते हैं - ऐसा जिनवरदेव का कथन है।

जीव उसे कहते हैं जो पर्याय को उत्पन्न नहीं करता, बंध-मोक्ष को नहीं करता और उसके कारण को नहीं करता। एक समय में जिसने चैतन्यस्वभाव ध्रुवधातु को धारण कर रखा है, ऐसी त्रिकाली वस्तु वह जीव है। ऐसा त्रिकाली ध्रुवपरमात्मा स्वयं मोक्षमार्ग को नहीं करता,

मोक्ष को नहीं करता, बंध को नहीं करता, बंधमार्ग को नहीं करता, पर्याय के उत्पाद को नहीं करता, पर्याय के व्यय को नहीं करता; उसे तीन लोक के नाथ जीव कहते हैं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय को जीव नहीं करता, पर्याय को पर्याय करती है। पर्याय अपने ही षट्कारकों की शक्ति से परिणमित होती है, द्रव्य पर्याय को नहीं करता। अज्ञानी राग की एकता में दब गया है, उसका पर्याय में दबाव आ गया है, द्रव्य तो द्रव्यरूप से सदा विद्यमान है, वह राग की भीड़ में भी दबता नहीं है और राग की भीड़ के दबाव में से छूटकर मोक्ष की पर्याय में भी द्रव्य नहीं आता।

पर की अपेक्षा से पर्यायरहित द्रव्य नहीं है, परंतु स्व की अपेक्षा से पर्यायरहित द्रव्य है। पर्याय और द्रव्य दो भिन्न-भिन्न सत्ताएँ हैं। वास्तव में तो पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता, व्यक्त को अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। ऐसे भगवान को लक्ष्य में लेनेवाली पर्याय भी वस्तु में नहीं आती।

जिनवरदेव उसे जीव कहते हैं जो उत्पाद-व्यय की दशा में नहीं आता, बंध-मोक्ष में नहीं आता, बंध-मोक्ष को नहीं करता। मोक्ष की पर्याय जिस वस्तु में नहीं है, ऐसी वस्तु दृष्टि में लेना चाहिये; तथापि दृष्टि में वस्तु नहीं आती। वस्तु जितनी और जैसी है, उसकी श्रद्धा पर्याय में आती है, परंतु वस्तु पर्याय में नहीं आती।

बंध और मोक्ष की पर्याय नहीं करे, उसे जिनवदेव जीव कहते हैं; ऐसा त्रिकाली ध्रुव जीव वह सम्यग्दर्शन का विषय है, पर्याय सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। सम्यग्दर्शन पर्याय है परंतु उसका विषय ध्रुव है। सम्यग्दर्शन की पर्याय में त्रिकाली ध्रुव की श्रद्धा आती है परंतु त्रिकाली ध्रुव नहीं आता। प्रतीति में पूर्णानंद के नाथ की श्रद्धा आती है परंतु उस पर्याय में पूर्णानंद का नाथ स्वयं नहीं आता।

ध्रुव अपनी पर्याय में आता नहीं है और पर्याय को करता नहीं है। अज्ञानी अपने द्रव्य को भूलकर राग करता है परंतु वह परद्रव्य का कर्ता नहीं है। निर्मल पर्याय द्वारा जिसे आत्मा की प्रतीति हुई है, वह राग का भी कर्ता नहीं है। शुद्ध निश्चयनय से भगवान आत्मा उत्पाद को नहीं करता, व्यय को नहीं करता, बंध को नहीं करता, मोक्ष को नहीं करता।

हे योगी! वास्तविक तत्त्व की दृष्टि से विचारा जाये - देखा जाये अर्थात् अनादि-अनंत वस्तुस्वभाव से परिपूर्ण त्रिकाली ध्रुव की दृष्टि से देखा जाये तो परिपूर्ण ध्रुव वस्तु पर्याय को करती ही नहीं।

सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है कि सम्यग्दर्शन काा विषय जो त्रिकाली ध्रुव है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय को नहीं करता। सम्यग्दर्शन की पर्याय ऐसा मानती है कि त्रिकाली वस्तु-आत्मा सम्यग्दर्शन की पर्याय को नहीं करता। भगवान आत्मा उत्पाद में भी नहीं आता और व्यय में भी नहीं आता। सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई, उसमें द्रव्य नहीं आता। सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि द्रव्य सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता नहीं है, सम्यग्दर्शन की पर्याय राग का कर्ता नहीं है, और राग परद्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं है।

सम्यग्दर्शन की पर्याय में संपूर्ण द्रव्य नहीं आता, परंतु संपूर्ण द्रव्य की प्रतीति आती है। जिनके एक समय की केवलज्ञान-पर्याय में यह जानने में आया है कि संपूर्ण द्रव्य क्या है तथा लोकालोक क्या है - ऐसे त्रिलोकी परमात्मा ने दिव्यध्वनि में कहा है कि भगवान आत्मा परद्रव्य या उसकी पर्याय का तो कर्ता नहीं है, राग का तो कर्ता नहीं है, परंतु निर्मल परिणति का भी कर्ता नहीं है। शुद्धनिश्चयनय से भगवान आत्मा बंध-मोक्ष से रहित है - ऐसे जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

भगवान आत्मा जिनकी दृष्टि में आया, वे कहते हैं कि भगवान आत्मा निर्मल पर्याय का कर्ता नहीं है; सम्यग्दर्शन वह मोक्षमार्ग है, उसका ध्येय त्रिकाली ध्रुववस्तु, वह भी सम्यग्दर्शनपर्याय का कर्ता नहीं है।

अनादि से भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप है, वह शुद्धपर्याय को भी नहीं करता। ऐसे शुद्धात्मा की अनुभूति के अभाव से जीव पर्याय में शुभ-अशुभ उपयोगरूप परिणमित होकर गतियों में उत्पन्न होता है, विनशता है, कर्मबंध करता है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का पिण्ड है, जानने-देखने की शक्तिवाला है - ऐसे भगवान आत्मा की सन्मुखता के अभाव से अज्ञान के कारण जीव शुभ-अशुभभाव करके शुभाशुभ कर्म बाँधकर जन्म-मरण करता है अर्थात् शुभाशुभ उपयोग से परिभ्रमण होता है;

इसलिये वह शुभोपयोग मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है ?

वस्तु पर्याय को करती नहीं है और पर्याय में आती नहीं है तो यह क्या हुआ ? – तो कहते हैं कि ऐसी शुद्धात्मानुभूति के अभाव में उसने शुभाशुभ उपयोग किया है। निगोद में भी शुभ उपयोग है। शुभाशुभ उपयोग करके शुभाशुभ कर्म बाँधकर जन्म, मरण, गति परिभ्रमण करता है और सहज परमपारिणामिक ज्ञायकभाव के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप शुद्धोपयोग करके मोक्ष प्राप्त करता है।

शुद्धात्मा की अनुभूति के सद्भाव में शुद्धोपयोग से मोक्ष प्राप्त करता है और उसके अभाव में शुभाशुभ उपयोग से बंध करता है, तथापि शुद्ध परमपारिणामिकभाव बंध–मोक्ष को नहीं करता, शुभाशुभभाव को नहीं करता और अनुभूति को भी नहीं करता। परमभाव की दृष्टि से अनुभूति का तथा शुभाशुभभाव का अकर्ता है।

उत्पाद–व्ययरहित ध्रुव, मोक्षपर्याय का कर्ता नहीं है। निश्चय से ध्रुव है, वह उत्पाद–व्यय का हेतु नहीं है; उत्पाद, वह व्यय या ध्रुव का हेतु नहीं है, तथा व्यय है, वह उत्पाद या ध्रुव का हेतु नहीं है, बंध या मोक्ष का दोनों भाव का कर्ता ध्रुव नहीं है, केवलज्ञान पर्याय का कर्ता भी ध्रुववस्तु नहीं है।

शुद्धात्मा की अनुभूति के अभाव में अज्ञानी शुभाशुभ उपयोगरूप परिणमन करके कर्मबंध करता है, उससे जीवन–मरण होता है। पर्याय में अनुभूति के अभाव में जन्म–मरण करता है तथा अबद्धस्वरूप चैतन्यमूर्ति की पर्याय में अनुभूति प्रगट होने पर शुद्धोपयोग से जीव मोक्ष करता है। इसप्रकार पर्याय में बंध–मोक्ष करता है, तथापि त्रिकाली मुक्तस्वभाव वस्तु से बंध और मोक्ष है ही नहीं। (क्रमशः)

# नयों के कथन का मूल प्रयोजन

सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'प्रवचनसार' नामक ग्रंथराज पर अमृतचंद्राचार्य ने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक गहन टीका संस्कृत भाषा में लिखी है। ग्रंथराज का मर्म स्पष्ट करने के लिये उक्त टीका के अंत में परिशिष्ट के रूप में ४७ नयों का वर्णन है, जो प्रत्येक आत्मार्थी को जानने योग्य है।

द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के अभिलाषी आत्मार्थियों को आत्मा की विविध योग्यतारूप अनंत धर्मों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी ने उक्त विषयों पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रवचन समय-समय पर दिये हैं। उन्हीं में से कुछ नयों के संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत हैं। *(सितम्बर अंक से आगे)*

**ज्ञाननय** – आत्मद्रव्य ज्ञाननय से विवेक की प्रधानता से सिद्धि सधे ऐसा है; चने की मुट्ठी देकर चिंतामणि खरीदनेवाले घर के कोने में बैठे हुए व्यापारी की भाँति।

ज्ञाननय से आत्मा को विवेक की प्रधानता से सिद्धि होती है, जिसप्रकार घर के कोने में बैठा हुआ व्यापारी चने की मुट्ठी देकर चिंतामणि खरीद ले तदनुसार।

अहा! आचार्यदेव की कथन शैली तो देखो! नय तो एब एक ही साथ होते हैं, परंतु कथन में क्रम होता है; तथापि क्रियानय के बाद तुरंत ज्ञाननय लिया है। एक व्यवहारनय तो दूसरा निश्चयनय।

जिसे धर्म प्रगट हुआ है, ऐसे जीव की योग्यता की यह बात है। सभी धर्म साधक जीव को एक समय में होते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मोक्ष हो, ऐसा एक धर्म है। जिस समय क्रियानय से मोक्ष होता है – ऐसा कहने की योग्यतारूप धर्म है; उसी समय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप विवेक से मोक्ष होता है – ऐसा एक धर्म है, वह निश्चयनय है। शुद्ध पर्याय से मुक्ति होती है, यह बात सच है, परंतु वह पर्याय है; इसलिये उस धर्म को जानकर भी ज्ञानी उसमें स्थित नहीं रहता – उसका अवलंबन नहीं लेता। ज्ञाननय के धर्म को जानकर भी लक्ष्य-ध्यान तो त्रिकाली ध्येय का – चैतन्यध्रुव का ही करना है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप विवेक से मुक्ति होती है - ऐसा एक धर्म है; परंतु उसे ध्येय बनाने से मुक्ति नहीं होती। मुक्ति होती तो है विवेक से ही, ज्ञान से ही, ध्यान से ही; परंतु उसका विषय तो ध्येयभूत त्रिकाली शुद्धात्मद्रव्यसामान्य ही है। ज्ञान ही, ध्यान की पर्याय को विषय बनाने से मुक्ति नहीं होती। ज्ञान से तथा ध्यान से मुक्ति होती है, ऐसे एक धर्म को साधक जानता अवश्य है, परंतु जानकर वहाँ खड़ा नहीं रहता अर्थात् ऐसे धर्म को जानकर भी साधक तो शुद्ध चैतन्यमात्र त्रिकाली द्रव्यस्वभाव का ही आश्रय लेता है; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वर्तमान पर्याय का वह आश्रय नहीं करता।

संत कितनी करुणापूर्वक ऐसे गहन विषय को समझा रहे हैं! ज्ञान से मुक्ति होती है, यह बात सच है, परंतु वह भी पर्याय है, इसलिये वह मात्र जाननेयोग्य है; ध्यान के विषय में विवेक को - ज्ञान को नहीं लेना है। **ध्यान का विषय तो अखंड चिदानंदस्वरूप त्रिकाली ध्रुवद्रव्य है। मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय का भी जिसमें अभाव है, ऐसा शुद्ध चैतन्य द्रव्य ही साधक का ध्येय है; उसी के आश्रय से मोक्षमार्ग की शुद्ध पर्याय प्रगट होती है और उसी से मुक्ति प्राप्त होती है।**

वास्तव में तो निश्चयनय का विषय त्रिकाली ध्रुव है, इसलिये निश्चयमोक्षमार्ग भी पर्याय होने से व्यवहारनय का विषय है। परंतु यहाँ तो ज्ञान-प्रधान शैली की बात है, इसलिये क्रियानय शुभभावरूप अनुष्ठानप्रधान होने से व्यवहारनय है और ज्ञाननय रागरहित शुद्धपरिणति होने से निश्चयनय है।

यह ज्ञाननय का विवरण है। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, ऐसे धर्मी की योग्यता की यह बात है, परंतु ऐसा नहीं है कि इन धर्मों को जानकर उनका अवलंबन लेने से सम्यग्दर्शन होगा। सम्यग्दर्शन तो त्रिकाली ध्रुव चैतन्यस्वरूप अभेद वस्तु की दृष्टि करने से ही होता है।

जीव की योग्यतारूप धर्म तो देखो! जिस समय क्रियानय है, उसी समय ज्ञाननय है। साधक इन दोनों नयों को जाननेयोग्य मानता है, परंतु उन पर लक्ष्य करने योग्य अर्थात् ध्यान के ध्येयरूप नहीं मानता। (क्रमशः)

# पुरुषार्थ ही एक मार्ग

सम्माननीय बहिन श्री चंपाबेन द्वारा समय-समय पर अभिव्यक्त उनके ही कुछ विचार-बिन्दु आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों के लिये यहाँ प्रस्तुत हैं।

- स्वभाव की बात सुनने पर हृदय में आर-पार चोट लग जाती है। 'स्वभाव' शब्द सुनने पर हृदय में आर-पार उतर जाती है, रोम-रोम खड़े हो जाते हैं, स्वभाव प्राप्त किये बिना चैन नहीं पड़ता, प्राप्त करके ही रहता है; यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है।
- पुरुषार्थ करने की कला समझ में आ जाये तो मार्ग की उलझन दूर हो जाती है। जैसे कला से कमाये, फिर धन-धन को ही कमा देता है अर्थात् धन कमाये तो ढ़ेर हो जाये; उसी प्रकार आत्मा में पुरुषार्थ करने की कला आ गयी, तब किसी समय तो अंतर में ढ़ेर का ढ़ेर हो जाये, तथा कभी सहज ज्यों का त्यों रहता है।
- 'मैं ज्ञायक और यह पर', शेष सब जानने के पहलू हैं। मैं ज्ञायक हूँ, शेष सब पर - इस एक धारा से पुरुषार्थ करे तो इसमें सब आ जाता है, परंतु स्वयं गहराई में उतरता ही नहीं, करने की भावना ही नहीं, इसलिये कठिन लगता है।
- 'मैं हूँ' ऐसा अपने से अपने को अस्तित्व का जोर आवे, स्वयं-स्वयं को पहिचाने, प्रथम ऊपर-ऊपर से अस्तित्व का जोर आवे, पश्चात् अस्तित्व का गहराई से जोर आवे; यह विकल्परूप होता है, परंतु भावना जोरदार होती है, इसलिये सहजरूप से जोर आता है। भावना की उग्रता हो तो सही जोर आने का अवकाश है।
- मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परंतु वह ऐसी उलझन न करे कि जिससे मूढ़ता हो जाये। वह सुख का वेदन चाहता है, वह मिलता नहीं और बाह्य में रहना सुहाता नहीं, इसलिये उलझन होती है, परंतु उलझन में से वह मार्ग शोध लेता है। जितना पुरुषार्थ उठायेगा उतना वीर्य अंतरंग में कार्य करेगा। आत्मार्थी हठ न करे कि मुझे बहुत उतावली से करना है। हठ स्वभाव में काम नहीं आती है। मार्ग सहज है, उतावली करने से प्राप्त नहीं होता।
- 'मैं अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ', ऐसे विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं, शांति नहीं मिलती, विकल्प

मात्र में दु:ख-दु:ख भासित होता है। तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाने पर, वस्तु-स्वभाव में लीनता करने से, आत्मार्थी जीव को सर्व विकल्प छूट जाते हैं और आनंद का वेदन होता है।

- सहज दशा को विकल्प करके टिका नहीं रखना पड़ता है। यदि विकल्प करके टिका रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं। तथा प्रगट हुई दशा टिका रखने के लिये कोई पृथक् पुरुषार्थ नहीं करना होता है, क्योंकि आगे बढ़ने का पुरुषार्थ करता है, इसलिये वह दशा तो सहज ही टिकी रहती है।
- साधक दशा में शुभभाव बीच में आता है परंतु साधक उसे छोड़ता जाता है, दृष्टि एक ध्येय पर है। जिसप्रकार राहगीर एक नगर से दूसरे नगर जाता है, तब बीच में अन्य-अन्य नगर आते हैं, उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुक नहीं जाता है; जहाँ जाना है, उसी का लक्ष्य रहता है।
- जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये। चाहे उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य कर सकता न हो फिर भी प्रतीति में ऐसा ही हो कि यह कार्य किये ही लाभ है, मुझे यही करना है; वह वर्तमान में पात्र है।
- अंतर के तल की तलाश कर आत्मा को पहिचान। शुभ परिणाम, धारणाज्ञान इत्यादि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत ही किया है' ऐसा मानकर जीव आगे बढ़न की बजाय अटक जाता है। अज्ञानी को थोड़ी सी कुछ जानकारी आ जावे, धारणाज्ञान से याद रहे, उसमें उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है, इसलिये वह बुद्धि के विकासादि में संतुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में अटक नहीं जाता है। पूर्ण पर्याय प्रगट होय, तथापि स्वभाव था वह प्रगट हुआ है, उसमें नवीन क्या ? इसलिये ज्ञानी को अभिमान नहीं होता है।
- आकाश-पाताल चाहे एक हो जाये, किंतु भाई ! अपने ध्येय को तू मत चूकना, अपने प्रयत्न को मत छोड़ना। आत्मार्थ को पोषण मिले वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ, उसे पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी।
- तू ऐसी सम्यक् मति कर जिससे तेरा प्रयत्न सही चलेगा, तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणत हो जायेगी। सत् के गहरे संस्कार डाले होंगे तो आखिर दूसरी गति में भी सत् प्रगट होगा। अत: सत्य के गहरे संस्कार डाल।

- सारे दिन में आत्मार्थ को पोषण मिले, वैसे परिणाम कितने हैं और दूसरे परिणाम कितने हैं, वह तलाश कर पुरुषार्थ की ओर झुकना। चिंतन खास करना चाहिये। कषाय के वेग में न बहना, गुणग्राही बनना।
- विकल्प में पूरा दु:ख लगना चाहिये। विकल्प में किंचित् भी शांति एवं सुख नहीं है, ऐसा जीव को भीतर से लगना चाहिये। एक विकल्प में दु:ख लगता है और दूसरे मंद विकल्प में शांति प्रतीत होती है, किंतु विकल्पमात्र में तीव्र दु:ख लगे तो भीतर मार्ग मिले बिना रहे नहीं।
- त्रिकाली ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। मुक्त है या बद्ध है – वह व्यवहारनय से है, वह पर्याय है। जिसप्रकार मकड़ी लार से बँधी हुई है, वह छूटना चाहे तो छूट सकती है; जिसप्रकार गृहस्थ मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जंजाल में फँसा हुआ है, फिर भी मनुष्यरूप से छूटा ही है; उसीप्रकार जीव विभाव की जाल में बँधा हुआ है, फँसा है, फिर भी प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है; ऐसा प्रतीत हो। चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान-आनंद की मूर्ति-ज्ञायकमूर्ति है, किंतु स्वयं अपने को भूल गया है। विभाव की जाल बिछाई हुई है, विभाव की जाल में फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो छूटा ही है। द्रव्य बँधा हुआ नहीं है।
- पात्रता प्रगट हुई हो, वह तो कहीं भी अटकता ही नहीं, और उस जीव को ज्ञान की कोई भूल रह गयी हो तो वह भी स्वभाव की लगन के बल से निकल जाती है। भीतर की खास प्रकार की पात्रता वाला जीव कहीं भी रुके बिना अपनी आत्मा को प्राप्त कर लेता है।
- जीव स्वयं पूरा खो गया है, उसे तो देखता नहीं है, और (बाहर की) एक वस्तु खो जाने पर स्वयं पूरा खो गया, रुक गया; लक्ष्मी, गृह, शरीर, पुत्र आदि में तू रुक गया। अरे! तू विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुक गया! बाहर ही बाहर में रुक गया, भाई! वह आत्म-प्राप्ति किसप्रकार हो?
- चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है। चाहे कुछ समय लगे, फिर भी भावना सफल होती ही है।

- अनुकूलता में नहीं समझता है तो भाई! अब प्रतिकूलता में तो समझ... समझ। किसी भी प्रकार समझ... समझ और वैराग्य लाकर आत्मा में जा।
- जिस जीव का अपने स्थूल परिणाम पकड़ने में ज्ञान काम न करे, वह अपने सूक्ष्म परिणाम कहाँ से पकड़े? सूक्ष्म परिणाम पकड़े नहीं तो स्वभाव कहाँ से पकड़ में आवे? ज्ञान को सूक्ष्म-तीक्ष्ण कर स्वभाव को पकड़े तो भेद-विज्ञान हो।
- पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से स्वयं ने जिस तत्त्व को पकड़ा हो, उसका मंथन करना चाहिये। निवृत्तिकाल में अपनी परिणति में रस उत्पन्न हो, ऐसी पुस्तकों का पठन कर लगन को जागृत रखनी चाहिये। आत्मा के ध्येयपूर्वक, परिणति में रस उत्पन्न हो, ऐसे विचार-मंथन करने पर अंतर से अपना मार्ग मिल जाता है।
- प्रथम द्रव्य-गुण-पर्याय को पहिचाने। चैतन्य द्रव्य के सामान्य स्वभाव को पहिचानकर, उसकी ओर दृष्टि लगाकर, उसका अभ्यास करते-करते चैतन्य उसमें तल्लीन हो जाये तो उसमें विभूति है, वह प्रगट होती है। चैतन्य के असली स्वभाव की लगन लगे तो प्रतीति हो, उसमें तल्लीन हो तो उसका अनुभव होता है। उसे प्रगट करने में अपनी तैयारी - उग्र पुरुषार्थ बारंबार करे, ज्ञायक का ही अभ्यास, ज्ञायक का ही मंथन, उसी का चिंतन करे तो प्रगट हो।
- अनादि काल से अज्ञानी जीव संसार में परिभ्रमण करता हुआ सुख की चाह में विषयों की ओर दौड़ता है और अनंत दुःखों को सहन करता है। किसी समय उसे सच्चा सुख दिखानेवाले मिले तो शंका रखकर रुक गया, किसी समय सच्चा सुख दिखानेवाले की उपेक्षा कर अपने सच्चे स्वरूप की प्राप्ति से विमुख हुआ, किसी समय पुरुषार्थ किये बिना रुक गया; इसप्रकार जीव अपने स्वरूप की प्राप्ति में अनंत बार असफल रहा। पुण्योदय से यह देह पाया, यह दशा पायी, ऐसे सत्पुरुष मिले; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करे तो किस भव में करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर। ऐसा योग और सच्चा आत्म-स्वरूप बतानेवाले सत्पुरुष पुनः-पुनः नहीं मिलेंगे।

# द्रव्यसंग्रह प्रवचन

**वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।**

[गतांक से आगे]

अब, दूसरी गाथा में जीवद्रव्य का वर्णन शुरु करते हैं। महावीर भगवान की दिव्यध्वनि के साथ सीधा संबंध रखनेवाले षट्खंडागम की रचना संतों ने की है, उसको जो स्वयं के मतिज्ञानरूपी चक्र से सिद्ध करता है, उसको सिद्धांतचक्रवर्ती कहा जाता है।

श्री नेमिचंद्र आचार्यदेव सिद्धांतचक्रवर्ती थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते संत थे। वे इस शास्त्र में जीवद्रव्य का वर्णन करते हैं। उसमें जीवद्रव्य संबंधी जीव अधिकार का कथन करते हैं।

**जीवो उवओगमओ, अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो।**
**भोत्ता संसारत्थो, सिद्धोसो विस्ससोड्ढगई ॥२॥**

(१) जीव (२) उपयोगमय (३) अमूर्त (४) कर्त्ता (५) स्वदेह परिमाण (६) भोक्ता (७) संसारस्थित (८) सिद्ध (९) ऊर्ध्वगमनस्वभावी - इसप्रकार जीव के नौ अधिकार हैं। इसका विस्तार से वर्णन पृथक्-पृथक् आयेगा।

ज्ञायकमूर्ति शुद्ध चिदानंद अभेद आत्मा है। उसके उपयोग के बारह भेद हैं। वे बारह पर्याय जीवद्रव्य की हैं। अर्थात् उपयोग के जितने भेद हैं, वे सब जीव की पर्याय के लिये हैं। अन्य के - पर के लिये वह पर्याय नहीं। द्रव्यदृष्टि के विषय में तो पर्याय को अभूतार्थ कहा है। किंतु यहाँ तो ज्ञान का विषय है अर्थात् पर्याय भी स्वयं के कारण से है, यह पहिचान कराता है। भावकर्म का कर्ता निश्चय से जीव है, ऐसा इसमें कहेंगे। समयसार में ऐसा कहा है कि निश्चय से आत्मा राग का कर्ता है ही नहीं किन्तु वहाँ शुद्धदृष्टि का कथन है, और यहाँ द्रव्य पर्याय दोनों के प्रमाणज्ञान का कथन है। जीव स्वयं की पर्यायरूप भावकर्म का कर्ता निश्चय से है, और जड़कर्म का कर्ता व्यवहार से है; ऐसा यहाँ कहेंगे।

इसप्रकार नौ अधिकारों में नयों से अद्‌भुत कथन होगा। संसारदशा भी जीव की है और सिद्धदशा भी जीव की है। कोई अन्य के कारण से संसारदशा अथवा सिद्धदशा नहीं। देखिये! सिद्धदशा प्राप्त होते जीव का ऊर्ध्वगमन होता है, वह उसका स्वभाव है। वह कोई विभाव नहीं। यहाँ सिद्ध हुआ, जब यहाँ से सिद्धलोक में गमन करता है, उस एक समय की पर्याय में स्वभाव ऊर्ध्वगमन है। नौ अधिकार कहे, उनकी व्याख्या कहते हैं।

(१) प्रथम जीव व्याख्या करते हैं :-

१. शुद्धनिश्चय से तो आदि, मध्य और अंत रहित है, निज-पर-प्रकाशक है, कर्म वगैरह की उपाधिरहित है और शुद्ध है। ऐसे चैतन्यस्वरूप प्राण - यह जीव के निश्चयप्राण हैं और उनसे ही जीव त्रिकाल जीता है। देखो! जीव की प्राण-कथा? कि त्रिकाल एकरूप चैतन्यप्राण, वही जीव के निश्चयप्राण हैं और उनसे ही जीव जी रहा है। सभी जीवों का ऐसा स्वभाव है।

इन्द्रिय वगैरह जड़प्राणों से अथवा अशुद्ध प्राणों से वास्तविक जीव जीता नहीं है। अन्न और धन को अज्ञानी जीव प्राण मानते हैं, किंतु यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धचैतन्यप्राण, वही तेरा प्राण है और उससे ही तू त्रिकाल जीनेवाला है। जीव का स्वभाव त्रिकाल स्व-पर-प्रकाशक है, अनादि से ऐसा ही स्वभाव है; किंतु उसको भूलकर मिथ्यात्व से दूसरी प्रकार मान बैठा है। निगोदिया जीव को भले ही खबर नहीं, लेकिन उसका भी ज्ञान-स्वभाव तो स्व-पर-प्रकाशक ही है।

अहो! त्रिकाल चैतन्यप्राण से जीनेवाला और स्व-पर-प्रकाशक चैतन्य प्रभु है, लेकिन मिथ्यादृष्टि जीव दूसरे के लिये जीनेवाला मानता है। चैतन्यप्राण जीव के त्रिकाल है। कभी नया प्रगट नहीं हुआ और कभी उसका वियोग नहीं हुआ, ऐसे चैतन्यप्राण द्वारा निश्चय से जीव जीता है। जिसको ऐसे शुद्ध निश्चय का भान हो, उसको ही अशुद्धप्राण का सच्चा ज्ञान होता है।

२. अशुद्ध निश्चयनय से अनादि कर्म-बंधन के वशीभूत होकर अशुद्ध ऐसे द्रव्यप्राण और भावप्राणों से जीता है। ज्ञानादिक की हीनता तथा राग-द्वेष और निमित्तरूप जड़ इन्द्रियाँ

वगैरह को यहाँ अशुद्धप्राण कहा है, उनसे जीव जीता है, ऐसा कहना, वह अशुद्ध निश्चयनय से है। किंतु त्रिकाल शुद्ध चैतन्यप्राण का भान रखकर इस अशुद्ध निश्चयनय का ज्ञान होता है। शुद्ध चैतन्य के भान बिना अशुद्धता का यथार्थ ज्ञान नहीं होता।

पर्याय की स्वतंत्रता के ज्ञान बिना पर्याय को अपनी ओर लक्ष्य करके द्रव्य का निर्णय कहाँ से कर सकेगा ? मेरी पर्याय स्वतंत्र मेरी है, पर से नहीं, ऐसा पर से भिन्नता का भान किया, उसको यथार्थ ज्ञान कब कहा जाये ? जो पर्याय को अंतर्मुख करके शुद्धद्रव्य का आश्रय करता है, तब पर्याय की स्वतंत्रता का ज्ञान सच्चा कहा जाता है।

शुद्धद्रव्य का आश्रय कर निश्चय प्रगट करता है, तब पूर्व के ज्ञान में व्यवहार का आरोप आता है। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा भी जिसको खोटी हो, झूठी हो, ऐसा जीव तो वस्तु समझने का पात्र भी नहीं। किंतु समीचीन देव-गुरु-शास्त्र को पहिचाने, उसको व्यवहार का आरोप कब आता है ? जब अखंड स्वभाव की ओर लक्ष्य कर उसकी निश्चित प्रतीति प्रगट करता है, तब पूर्व के ज्ञान को व्यवहार का आरोप आता है। अर्थात् निश्चय सहित व्यवहार को सत्य व्यवहार कहा जाता है।

पहिले व्यवहार, इसके बाद निश्चय, ऐसा नहीं है। शुद्धता के भान बिना अकेली अशुद्धता का ज्ञान, उसको तो व्यवहारिक सही ज्ञान भी नहीं कहा जाता। स्वयं के ज्ञान बिना पर का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जीव स्व-पर-प्रकाशक है, लेकिन अपने को न जाने, पर को जाने, तब उसमें पचास प्रतिशत भी सत्य ज्ञान नहीं आता। स्वयं को जाने बिना पर का ज्ञान भी सत्य होता ही नहीं। कर्म को और जीव की अशुद्धता को निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। इसलिए द्रव्यप्राण और भावप्राण दोनों को यहाँ अशुद्धनिश्चय में ले लिया है। वास्तविक रीति से तो जड़प्राण असद्भूत व्यवहार में आता है, लेकिन यहाँ उसको भिन्न नहीं किया। [क्रमशः]

# ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

**प्रश्न**– 'प्रमाणज्ञान के लोभ से निश्चय में नहीं आ सकता' उक्त कथन का क्या आशय है ?

**उत्तर**– प्रमाणज्ञान के लोभ से निश्चय में नहीं आ सकता – इस कथन का तात्पर्य यह है कि अज्ञानी पर्याय का और द्रव्य का ज्ञान करने जाता है, वहाँ अनादि के अभ्यास से पर्याय में अहंपने का जोर होने से द्रव्य का ज्ञान सच्चा नहीं होता। अज्ञानी को ऐसा लगता है कि 'पर्याय है न! पर्याय है तो सही!' – इसप्रकार पर्याय पर जोर देने से द्रव्य पर जोर नहीं दे सकता, इसलिये अंतर्मुख नहीं हो पाता। पर्याय को नहीं मानूँगा तो एकांत हो जायेगा – ऐसा भय बना रहता है। इसप्रकार प्रमाणज्ञान के लोभ से पर्याय को गौण करके द्रव्यसन्मुख नहीं हो पाता।

द्रव्य पर्याय का दाता नहीं है, ऐसा योगसार में आता है। यह कथन द्रव्यार्थिकनय का है और द्रव्य, पर्यायरूप से परिणमित होता है, यह कथन पर्यायार्थिकनय का है। वहाँ भी द्रव्यसामान्य तो सामान्यरूप ही रहा है, परंतु द्रव्य का एक धर्म विशेषरूप से परिणमित होता है।

समयसार गाथा ५० से ५५ में अनुभूति को आत्मा कहा है। वहाँ जितने विकल्प उठते हैं, उनसे भिन्न और स्व से अभिन्न कहना है, इसलिये अनुभूति की निर्मल पर्याय को आत्मा कहा है। परंतु जब यह बतलाना हो कि वह अनुभूति कैसे प्रगट होती है ? – तब त्रिकाली ध्रुवचैतन्य वह 'स्व' है और उसका आश्रय करनेवाली पर्याय वह 'पर' है, भिन्न है – ऐसा नियमसार की ५०वीं गाथा में कहा है। उस अनुभूति की निर्मल पर्याय ध्रुवद्रव्य का स्पर्श नहीं करती और ध्रुवद्रव्य अनुभूति का स्पर्श नहीं करता। अहो! यह तो परम अध्यात्म में भरे हुए गंभीर सूक्ष्म भाव हैं। जाननक्रिया और

त्रिकाली ध्रुवद्रव्य एक-दूसरे का स्पर्श नहीं करते, तथापि जाननक्रिया का आधार आत्मद्रव्य है।

**प्रश्न**- शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों के पिण्ड को द्रव्य कहा है न ?

**उत्तर**- वह तो निश्चयाभासी जीव पर्याय को सर्वथा मानता ही नहीं है, उस अपेक्षा से उसे समझाने के लिये शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों का पिण्ड, सो द्रव्य है - ऐसा कहा है, परंतु उससे द्रव्य में शुद्ध-अशुद्ध पर्यायें वर्तमानरूप से विद्यमान हैं, ऐसा कहने का तात्पर्य नहीं है। द्रव्य तो शक्तिरूप से अकेला पारिणामिकभावरूप ही है; जो पर्याय को सर्वथा नहीं मानता, उससे कहते हैं कि भविष्य की पर्यायें द्रव्य में शक्तिरूप हैं और भूत की पर्यायें योग्यतारूप हैं। पर्यायें सर्वथा हैं ही नहीं - ऐसा नहीं है; इतना जानने के लिये कहा है।

**प्रश्न**- दो नयों को जानना कहा है न ?

**उत्तर**- जानना वह तो ज्ञान का स्वभाव है; जानने के लिये तो सभी नय कहे हैं, परंतु धर्मरूप प्रयोजन की सिद्धि के लिये तो एकरूप त्रिकाली ध्रुव शुद्ध चैतन्य सामान्यद्रव्य है, वही आश्रय करने योग्य है। जानने के विषय में आदरणीयपना मान लेने से दृष्टि की विपरीतता होती है।

**प्रश्न**- पर्याय को नहीं मानने से तो एकांत हो जाता है ?

**उत्तर**- 'पर्याय है ही नहीं' - ऐसा नहीं है। श्रद्धा करती है, जानती है, स्थिरता करती है, वह पर्याय ही है; परंतु पर्याय का आश्रय करना, वह विपरीतता है। चैतन्यसामान्य का आश्रय करने के लिये पर्याय को गौण करके निषेध किया जाता है, परंतु उससे पर्याय पर्यायरूप में सर्वथा है ही नहीं - ऐसा नहीं है।

एकरूप ध्रुव सामान्यद्रव्य वह परमशुद्ध निश्चयनय का विषय है, उसमें निर्मल पर्याय को मिलाकर देखना, वह मेचकपना होने से अशुद्धनय का विषय है, मलिनता है, सोपाधिक है, सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है।

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल विमल न विचारिये यहै सिद्धि नहिं और॥

एकरूप ध्रुवचैतन्य ही एक सम्यग्दर्शन का विषय है। शरीरादि नोकर्म को तथा द्रव्यकर्म को बाह्यतत्त्व कहना हो, तब राग को स्वतत्त्व कहा जाता है; राग को बाह्यतत्त्व कहना हो, तब निर्मल पर्याय को स्वतत्त्व कहा जाता है; निर्मल पर्याय को बाह्यतत्त्व कहना हो, तब त्रिकाली द्रव्य को स्वतत्त्व कहा जाता है; राग या निर्मल पर्याय को अपेक्षा से बाह्यतत्त्व तथा स्वतत्त्व दोनों कहे जाते हैं, परंतु त्रिकाली ध्रुवद्रव्य को तो सर्वथा प्रकार से स्वतत्त्व ही कहा जाता है और वह एक ही दृष्टि का विषय होने से उपादेय है।

❀*❀*

# समाचार दर्शन

**सोनगढ़** – पूज्य गुरुदेवश्री सुख-शांति में विराज रहे हैं। अब वे पूर्ण स्वस्थ हैं। दोनों समय प्रवचन एवं रात्रि-चर्चा नियमित रूप से चल रही है। प्रातः परमात्मप्रकाश पर और दोपहर समयसार पर मार्मिक प्रवचन हो रहे हैं।

**प्रतिनिधियों का सम्मेलन और तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की मीटिंग**

वर्तमान स्थितियों से उत्पन्न समस्याओं पर विचार-विमर्श करने हेतु मुमुक्षु मंडलों के प्रतिनिधियों एवं प्रवचनकारों का एक सम्मेलन दिनांक १३-१४ नवम्बर १९७६को श्रीमंत सेठ ऋषभकुमारजी के आमंत्रण पर खुरई (म.प्र.) में बुलाया गया है। इस अवसर पर श्री लालचंदभाई मोदी बम्बई, श्री बबूभाई मेहता फतेपुर, श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, श्री युगलकिशोरजी 'युगल' कोटा एवं श्री नेमीचंदजी पाटनी आगरा के पधारने की पूरी-पूरी संभावना है।

इसी अवसर पर श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की मीटिंग भी रखी गयी है, जिसमें उसके कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जावेगी तथा उनकी कार्यान्वयन की व्यवस्था करने पर निर्णय लिये जावेंगे। **— हरकचंद बिलाला, अशोकनगर, संयोजक**

## स्थान-स्थान पर शास्त्रों की अविनय के विरुद्ध प्रस्ताव पारित

विगत दिनों नैनवां तथा गौहाटी में जो शास्त्रों का सार्वजनिकरूप से अविनय किया था - उसके सम्बन्ध में मालवा प्रान्तिक सभा, इंदौर; अ०भा० दिगम्बर जैन परिषद्, दिल्ली तथा शिरपुर, मलकापुर, खण्डवा, खुरई, विदिशा, रांझी-जबलपुर आदि-आदि अनेक स्थानों पर सभाऐं, आयोजित हुईं और उनमें उक्त घटनाओं पर खेद प्रगट किया गया तथा उनके विरुद्ध प्रस्ताव पारित हुए हैं; जिनके निरंतर समाचार हमें प्राप्त हो रहे हैं। स्थानाभाव के कारण सभी के नाम एवं प्रस्ताव यहाँ देना संभव नहीं है। अत: इसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। **—प्रबंध सम्पादक**

## दिगम्बर जैन महासमिति का प्रथम अधिवेशन

जयपुर में ११ व १२ अक्टूबर १९७६ को साहू शांतिप्रसादजी जैन की अध्यक्षता में सानंद संपन्न हुआ। जिसमें जयपुर-समाज के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष से तीन सौ से अधिक प्रतिनिध पधारे थे। आम सभा राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री हरिदेवजी जोशी की अध्यक्षता में हुई, जिसमें उपराष्ट्रपति श्री वी०डी० जत्ती प्रमुख अतिथि थे। इसी अवसर पर राजस्थान के शताधिक कार्यकर्ताओं का निर्वाणोत्सव में की गई सेवाओं के लिये स्वर्णपदक प्रदान कर सम्मान किया गया।

राजस्थान समिति की ओर से साहू शांतिप्रसादजी का अभिनंदन किया गया। अभिनंदन के उत्तर में बोलते हुए साहूजी ने अभी हाल में नैनवाँ और गौहाटी में हुई जिनवाणी के अपमान की घटनाओं पर अत्यंत खेद व्यक्त किया। इसका जिक्र करते हुए उनकी आँखें कई बार गीली हो गयीं और उन्होंने अत्यंत भावुक होते हुए ऐसा न करने देने की समाज से अत्यंत मार्मिक अपील की, जिसका उपस्थित समाज पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

**तारंगा** - सिद्धक्षेत्र तारंगाजी पर कार्तिक की अष्टाह्निका में श्री दि० भ० महावीर २५००वाँ निर्वाण-महोत्सव समिति गुजरात के तत्त्वावधान में सिद्धचक्र विधान महोत्सव एवं शिक्षण-शिविर हो रहे हैं। श्री बाबूभाई मेहता फतेपुर एवं श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर के प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होगा। **- अमृतलाल संघवी, मंत्री**

**बड़ौदा** - श्री पूनमचन्दभाई हिम्मतनगर वालों के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई।

आपकी प्रेरणा से यहाँ कुन्दकुन्द-कहान वीतराग-विज्ञान पाठशाला, कुन्दकुन्द-कहान स्वाध्याय मंडल, कुन्दकुन्द-कहान महिला मुमुक्षु मंडल की स्थापना हुई।

**- रमेशभाई शाह, मंत्री, दि० जैन मुमुक्षु मंडल**

**उज्जैन** - स्थानीय श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला अबाध गति से चल रही है। अध्यापन कार्य श्री प्रदीपकुमारजी झांझरी स्वयं करते हैं। आपने आत्मधर्म को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में अपूर्व निमित्त समझकर श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला के सभी छात्रों को नि:शुल्क आत्मधर्म का ग्राहक बनाया। पूरा का पूरा झाँझरी परिवार पाठशाला आदि धार्मिक कार्यों में लगा रहता है।

**गुना** - स्थानीय श्री दिगम्बर जैन मंदिर बाजार में दिनांक २-१०-७६ से ११-१०-७६ तक श्री जमनाप्रसादजी एडवोकेट की ओर से श्री त्रैलोक्य मंडन विधान का आयोजन किया गया। जिसमें ब्र० परसरामजी, ब्र० दीपचंदजी, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित घासीलालजी अलीगढ़, पंडित कैलाशचंदजी ललितपुर का समागम रहा। प्रतिदिन तीन बार उक्त विद्वानों के प्रवचन होते थे तथा अपराह्न १ से ५ तक विधान का कार्यक्रम चलता था। सभी कार्यक्रमों में समाज की उपस्थिति अच्छी रहती थी। लगता था पुन: पर्यूषण पर्व आ गया है।

**—केवलचंद पाण्डया, गुना**

## चैत्यालय का शिलान्यास

**कुरावड़** - श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा श्री दिगम्बर जैन चैत्यालय का शिलान्यास शनिवार, दिनांक १३-११-१९७६ को हो रहा है। कुरावड़ आने के लिये उदयपुर (उदीयापोल, दरवाजे के बाहर) से हर एक घंटे बाद बस मिलती है। आप सादर आमंत्रित हैं।

**— मंत्री, श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, कुरावड़**

# पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

**सहारनपुर से श्री पंडित सोमदत्तजी शर्मा लिखते हैं –**

श्रीमद्भिः प्रेषितायां आत्मधर्ममासिकपत्रिकायाम् उत्तम क्षमा (एकमनुशीलनम्), अनेकान्तमयी मुर्तिः सरस्वती देवी, ज्ञान–गोष्ठी – इत्यादीन् लेखान् पठित्वा लेखनशैलीं विवेचनाचातुरीं मध्येमध्ये प्रस्फुटितां लक्षणां व्यञ्जनांच दृष्ट्वा भूयो भूयः प्रशंसामि भवतो वचनविन्यासम्।

तथा स्वकीय नगरेऽपि दशलक्षणपर्वणि तत्र भवतां प्रवचनशैलीं श्रावं श्रावं साम्प्रतमपि तदेव प्रवचनमाधुर्यं गाम्भीर्यं च स्मारं स्मारं लोकोत्तरमानन्द मनुभवामि। अध्यात्मग्रन्थेषु पूर्वाचार्यैः प्रतिपादिताः कठिना अपि सिद्धान्ताः श्रीमद्भिः सरलतमत्वेन स्पष्टीकृत्य जनहृदयेषु प्रापिताः।

**फिरोजाबाद से श्री चन्द्रभानजी जैन लिखते हैं :–**

अब तो आत्मधर्म का रूप ही बदल गया है। आपका चयन बहुत सुंदर है। ज्ञान–गोष्ठी तो इसका अनिवार्य अंग रहना ही चाहिये। **श्री चम्पाबेन के विचार–बिन्दु भी अवश्य देते रहिये।** सम्पादकीय – उत्तम क्षमा में क्षमा और क्रोध का जो विश्लेषण हुआ है, अत्यंत मार्मिक व हृदयग्राही है। मैं चाहता हूँ कि इसीप्रकार पूरे दश धर्मों का विवेचन अवश्य कीजिए।

**बण्डा बेलई से श्री कपूरचंदजी भायजी लिखते हैं –**

आपके द्वारा संपादित आत्मधर्म के पिछले चारों अंकों को देखा। आत्मधर्म तो वैसे ही शाश्वत सुख का प्रकाशक रहा है, इसमें नवीनता आ जाने से मणि–काँचन सुयोग बन गया है। खासकर सम्पादकीय तो अनुपम हैं ही, ज्ञान–गोष्ठी भी महान उपकारी रही है। यदि कुछ नई पौध (शिशुओं) को व नए खून (तरुणों) को कुछ नये स्तम्भ और दे सकें तो विशेषता होगी।

**अशोकनगर से श्री लालारामजी साहू 'मधुप', एडवोकेट लिखते हैं –**

आपके सम्पादन में आकर 'आत्मधर्म' नयी गरिमा एवं सौष्ठव को पा गया। स्वामीजी के शाश्वत विचारों को व्यवस्थित एवं अधुनातन शैली में प्रस्तुत करके आपने महनीय कार्य किया है।

**विदिशा से श्री पंडित रतनचंदजी शास्त्री, न्यायतीर्थ, एम.ए. लिखते हैं :–**

आत्मधर्म के चारों अंक मिले, एक से एक सुंदर हैं। पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का संपादन तो अपूर्व विशेषता लिये है ही, साथ ही सम्पादकीय भी अपने ढंग के अनोखे हैं। अब तो एक भी पंक्ति बिना पढ़े छोड़ी नहीं जाती। टाइप व सैटिंग भी बड़ा सुंदर है। इसके लिये मेहनता तो बहुत करनी पड़ती है, पर उसका लाभ भी अपूर्व है।

**आवश्यक सूचना**

श्री वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर द्वारा ली जानेवाली शीतकालीन परीक्षाएँ दिनांक २, ३ व ४ फरवरी, १९७७ को होंगी। विस्तृत कार्यक्रम रौल नम्बरों के साथ परीक्षा केन्द्रों को भेजा जायेगा।

मध्यप्रदेश एवं राजस्थान के स्कूलों की छुट्टियों के कारण श्री वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की शीतकालीन परीक्षा के प्रवेश फार्म भरकर भेजने की अंतिम तिथि १ नवम्बर से बढ़ाकर २० नवम्बर कर दी गयी है। फार्म भरकर शीघ्र भेजें। तत्पश्चात् दस पैसा प्रति छात्र विलम्ब शुल्क के साथ प्रवेश फार्म १० दिसम्बर तक स्वीकार किये जा सकेंगे।

**—मंत्री, परीक्षा बोर्ड**

# प्रबंध संपादक की कमल से

## प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें —

(१) आत्मधर्म के सभी अंक (जुलाई से नवम्बर) सभी सदस्यों को भेजे जा चुके हैं।

(२) कई पते गलत होने के कारण आत्मधर्म हमारे पास वापस लौट आते हैं, अतः जिनको अंक न मिले हों, वे अपना पता स्पष्ट लिखकर अंक मंगा लेवें।

(३) जिन ग्राहकों ने आत्मधर्म की ग्राहक शुल्क जमा करा दी हो परंतु उन्हें अभी तक आत्धर्म की एक भी प्रति प्राप्त न हुई हो, वे सज्जन पत्र द्वारा अधिक से अधिक हवाला देकर सूचित करें। यदि संभव हो तो रसीद क्रमांक या मनिआर्डर की वापसी रसीद आदि भिजवा दें जिससे आत्मधर्म न मिलने के कारण का पता लगाया जा सके।

(४) जिन भाईयों के पास आत्मधर्म की कच्ची रसीद बुकें हों, वे शीघ्रातिशीघ्र आत्मधर्म कार्यालय जयपुर को भिजवाने का कष्ट करें।

**१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।**

## अब तो चेत.....

अरे भाई! अनादि काल से परिभ्रमण करते हुए तूने अनंत भव धारण किये। तेरी मृत्यु के बाद तेरी माता ने रो-रोकर इतने आँसू बहाये हैं कि समुद्र भर जाए।

यह शरीर तो वेदना की मूर्ति है, शरीर के प्रत्येक रोम में छियानवें-छियानवें रोग भरे हैं। उन रोगों की भयंकर वेदनाएँ तूने सहन की हैं। परंतु आत्मा को जाने बिना उस दुःख का अंत नहीं आया।

भाई! अब दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है। उन दुःखों से छूटने का समय आया है। अब भी यदि नहीं चेता तो फिर इस भव-समुद्र में समा जाएगा।

भव-समुद्र में डूबते हुए जीवों से धर्मात्मा संत कहते हैं कि - हे जीव! तेरे अपने हित के लिये यह बात है, अपनी आत्मा को उबारने की यह बात है। मरते समय अपनी आत्मा ही तुम्हें शरणभूत होगी, इसलिये उसे जानने का प्रयत्न करो।

**— पूज्य कानजीस्वामी**

Reg. No. RJ-2712

# हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

| | रु० पैसे |
|---|---|
| समयसार | १२-०० |
| प्रवचनसार | १२-०० |
| पंचास्तिकाय | ७-५० |
| नियमसार | ५-५० |
| अष्टपाहुड़ | १०-०० |
| समयसार नाटक | ७-५० |
| समयसार प्रवचन भाग १ | ४-५० |
| समयसार प्रवचन भाग २ | ४-५० |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ५-०० |
| समयसार प्रवचन भाग ४ | ७-०० |
| आत्मावलोकन | ३-०० |
| श्रावकधर्म प्रकाश | ३-०० |
| छहढाला (सचित्र) | १-५० |
| द्रव्यसंग्रह | १-२० |
| लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | ०-४० |
| प्रवचन परमागम | २-५० |
| धर्म की क्रिया | २-०० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १ | १-५० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २ | १-५० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३ | १-५० |
| तत्त्वज्ञान तरंगिणी | ५-०० |
| अलिंग-ग्रहण प्रवचन | १-६० |
| बालपोथी भाग १ | ०-२५ |
| बालपोथी भाग २ | ०-४० |
| ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | ३-०० |
| जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २ | ३०-०० |

| | रु० पैसे |
|---|---|
| परमात्म पूजा संग्रह | २-०० |
| मोक्षमार्गप्रकाशक | ५-०० |
| पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व | १०-०० |
| तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ | ५-०० |
| " " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में) | २-०० |
| मैं कौन हूँ? | १-०० |
| पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य | ०-६५ |
| कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य | ०-३० |
| वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका | ३-०० |
| अनेकांत और स्याद्वाद | ०-३५ |
| तीर्थंकर भगवान महावीर | ०-४० |
| वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर | ०-२५ |
| सत्य की खोज (कथानक) | प्रेस में |
| अपने को पहचानिए | ०-५० |
| पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ | ०-३५ |
| अर्चना (पूजा संग्रह) | ०-४० |
| मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर) | ०-५० |
| बालबोध पाठमाला भाग १ | ०-५० |
| बालबोध पाठमाला भाग २ | ०-७० |
| बालबोध पाठमाला भाग ३ | ०-७० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १ | ०-७० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २ | १-०० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३ | १-०० |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ | १-२५ |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ | १-२५ |
| सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १ | ०-२५ |

---

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ( भावनगर-गुजरात )**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**